IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में आर्थिक परिदृश्य

डॉ0 रागिनी सोनकर

सहायक आचार्य, हिन्दी बी0एड्0

स्नातकोत्तर महाविद्यालय पट्टी,

प्रतापगढ़ (उ0प्र0)

साहित्य भोगे हुए यथार्थ का प्रतिबिम्ब होता है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में उपन्यास एक ऐसी ही विधा है। उपन्यास मानव–जीवन के विविध पक्षों को गहराई से देखने–परखने का सहज माध्यम है। साहित्य में सम्पूर्ण परिवेश जीवन पद्धति तथा विशेषताओं को अंकित करने वाला तत्व ही आंचलिकता है। आंचलिकता के सम्बन्ध में विचार करते हुए जैनेन्द्र कुमार ने ठीक ही लिखा है –''आंचलिकता प्रवृत्ति पर दृष्टि है जिसके केन्द्र में अमुख पात्र स्वयं में इष्ट नहीं मानों, अमुक समष्टि के जीवन की यथार्थता को उभार देने में ही इसकी चरितार्थता है।

अंचल की पृष्ठभूमि पर लेखक वहाँ के जनपद के सामाजिक जीवन का चित्रण स्थानीय किसानों, मजदूरों, बुद्धिजीवियों का सजीव वर्णन करता है। डॉ0 बेचन इस सम्बन्ध में कहते हैं – ''ऐसी रचनाओं में नवीन सामाजिक पृष्ठभूमि में उभरते हुए मानव, आर्थिक–सामाजिक संघर्ष एवम् जीवन का चित्रण करना है।

अर्थ सामाजिक व्यवस्था का मूलभूत आधार है। जैसा कि हम सभी को ज्ञात है कि भारतीय अर्थव्यवस्था का केन्द्र कृषि एवं उद्योग–धंधे हैं। आंचलिक उपन्यासों में अधिकांशः गाँव के कृषक जीवन का चित्रण अधिक हुआ। अतः कृषि प्रधान आर्थिक व्यवस्था का सूक्ष्मता में निरीक्षण किया है। किसानों की आर्थिक दशा भूमि के स्वामित्व पर निर्भर करती है। स्वतंत्रता से पूर्व भूमि पर स्वामित्व जमीदारों के हाथों में था। जमींदार एक प्रकार के सरकारी प्रतिनिधि थे जिनका कार्य कर वसूल करना होता था परन्तु वास्तव में उन्हीं का भूमि पर स्वामित्व होता था। गांवों में कृषक वर्ग निम्नतर स्थितियों का मूल कारण जमींदार एवं पूंजीपतियों द्वारा उनका आर्थिक शोषण रहा है। इस वर्ग ने धन एवं पद के बल पर सरकारी कर्मचारियों तथा राजनीतिक नेताओं का सहयोग प्राप्त कर शोषण की अजस्त धारा को प्रवाहित किया। नागार्जुन का 'बलचनामा' उपन्यास जमींदार द्वारा कृषकों के शोषण की जीवंत गाथा है। जैसा कि हमें ज्ञात है कि साहित्य हमारे भोगे हुए यथार्थ का आइना होता है। बलचनामा उपन्यास में ही पिता पर बाग से अमिया तोड़ लेने के कारण पाश्विक अत्याचार करना, पिता लालचंद्र को बांधकर मारना और फिर उसकी ज्वर से मृत्यु हो जाना मंझले मालिक द्वारा बलचनामा का खेत में मिला लेना, मालकिन का आम की आधी जली चैली से बलचनामा की मीठ दागना, मां का जमींदार की चाकरी करना बलचनामा से कोल्हू के बैल की भांति दिन–रात काम कराना इत्यादि ।

उस समय जमींदारी शोषण मानवता को शर्मसार करते हुए अपने चरम पर थी। डॉ0 विवेकी राय के शब्दों में 'मध्ययुगीन भारतीय समाज में आर्थिक शोषण के संदर्भ में जमींदार एक मिथ और प्रतीक की भांति गृहीत होते आये हैं। अपनी सुदृढ़ स्थिति का लाभ उठाकर ये नये–नये दांव– पेज खेलते। दीन–हीन इन गरीब मजदूरों की जिन्दगी इन समृद्ध लोगों की गुलामी में ही बीत जाती।

नागार्जुन ने बलचनामा, रतिनाथ की चाची तथा बाबा बटेसरनाथ उपन्यासों में बेगार – यथा का घिनौना स्वरूप अनेक स्थानों पर उभर कर आया है। लोगों से बेगार लेना उनका सहज अधिकार था। बाबा बटेसर नाथ का चित्र है –''छोटी औकात के और नीची जाति के लोगों को तो खैर व कीड़े–मकोड़े समझता ही था, अच्छी–अच्छी हैसियत के भले खासे व्यक्तियों से वक्त–बेवक्त नाक रगड़वाता था जमींदार। ग्रामीण अंचल में निम्न जातियों को अक्सर शादी–ब्याह, जन्म–मरणा, रोग–व्याधि से सम्बद्ध व्यवहार के निर्वाह में औकात से बाहर जाकर खर्च करने पर मजबूर होना पड़ता है। इनके पास नियमित आय के साधन होते नहीं। इसलिए कर्ज का सहारा लेना पड़ता है। ऐसे जरूरतमंद लोग हर गांव में बड़ी तादात में होते हैं। इन लोगों की मजबूरी का फायदा उठाकर इनसे बेगार कराते हैं।

आजादी के बाद भी इस प्रथा में कोई कमी नहीं आयी बेगार प्रथा के प्रति इन ग्रामीणों के मन में आक्रोश तो भरा हुआ है पर वह इसके खिलाफ आवाज नहीं उठा पाते। देवेन्द्र सत्यार्थी के अनुसार – ''लोगों से बेगार लेना तो मालगुजार अपना अधिकार समझता है। हो सकता है कि बेगार के विरूद्ध आवाज सुनते ही धनपाल चिढ़ जाय और मुंशी दीनानाथ को हुक्म दें कि जितनी असमियों का लगान तो घर–घर कुर्की होने लगेगी। बहुतों के बैल कुर्क हो जायेंगे, फिर ये लोग खेती कैसे करेंगे ? खेती तो खैर यो भी संकट में है। पिछले वर्ष इतनी कम वर्षा हुई कि लोग लगान के रूपये भी नहीं चुका सके। अब के फिर यही हाल होने वाला है।

भारत में जमींदारी प्रथा और महाजनी सभ्यता सामंतवाद का ही परिवर्तित रूप है। जमींदारों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने के कारण उन्हें निम्न स्तरीय किसानों एवं मजदूरों के साथ मनमाना व्यवहार करने की पूरी छूट थी। आंचलिक उपन्यास 'पानी के प्राचीर' में उत्तर प्रदेश के कछार अंचल की पृष्ठभूमि पर आधारित है जिसमें जमींदार गजेन्द्र बाबू के सीनियर तहसीलदार मुंशी दुक्की लाल ग्रामीण कृषकों से कर वसूल करने का कार्य करते हैं। उनका कर वसूल करने का अमानवीय व्यवहार रामदरश मिश्र के शब्दों में ''दरबार में बीसो किसान पकड़कर कर लाए गए थे। सबके सब फटे हाल नंगे बदन, धूल–धूसित सर वाले, मुंशी जी सबको बारी–बारी से मुर्गा बनाकर पीट रहे थे – ''मैं सबकी नए पहचानता हूँ – तुम सब साले चोर हो। बिना मारे तो सुनते ही नहीं हो। लात के देवता हो बात से क्यों मानोगे ? दो–दो साल की लगान बाकी है।..... किसान मुर्गे की ही हालत में ही गिर पड़ा, उसका ललाट फूट गया। .... किसान कसाई के हाथ में पड़ी गाय की तरह निरीह आंखों से दया की भिक्षा मांग रहे थे।'' उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज का सजीव चित्रण अत्यन्त निष्पक्ष भाव से प्रस्तुत किया है; सामन्तों एवं जमींदारों का मजदूरों व किसानों के प्रति निरीह व्यवहार का यथार्थ चित्रण हृदय तल को द्रवित कर देता है। आर्थिक स्थिति अत्यन्त सोचनीय थी।

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में किसानों की निर्धनता, उनकी मजबूरी, बेकारी, शोषण और अत्याचार के अनेक चित्र बिखरे पड़े हैं। ये उपन्यास सामन्तों के नियम, जमींदारों के आतंक व महाजनों के शोषण के जीवन्त दस्तावेज हैं। 'बाबा बटेसरनाथ' में रूपहली गाँव के जमींदार शत्रुमर्दनराय चालीस रूपये समय पर न देने के कारण आसामी को बांधकर लालचीटों से उसका शरीर छलनी करवाने में नहीं करवाते। इसी प्रकार 'नदी फिर बह चली' उपन्यास में जमींदार बाबू से तो समस्त गांव ही नहीं पुलिस वाले भी आतंकित रहते – ''कौन किसान या रैयत था उनकी जमींदारी में जिसके दरवाजे पर उनकी ओर से कुर्की या जब्ती के सम्मन न पहुंचे हों, दवा लाने के बिना किसी का बेटा भले ही मर जाय मगर उनके बेगार को कोई कैसे टाल देता।'' ग्रामीण निर्धन जनता जिस जमीन को अपने खून पसीने से जोतती उस पर उसका कोई अधिकार नहीं था। यह कैसी बिडम्बना थी। स्वतन्त्रता के पश्चात – भारत सरकार ने राजनैतिक स्वतन्त्रता के साथ–साथ आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त कराने के लिए सुनियोजित योजनाओं का प्रारम्भ किया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य था सभी वर्गों को आर्थिक समृद्धि। आर्थिक विकास की इस नीति के तहत सर्वप्रथम जमींदारी उन्मूलन का कार्य किया गया। जमींदारी उन्मूलन के द्वारा सर्वप्रथम किसानों एवं श्रमिकों या मजदूरों को भूमि के स्वामित्व का अधिकार प्रदान किया गया। इस बात की घोषणा होते ही जमींदार वर्ग सक्रिय हो गया। जमींदारों ने अनुचित साधनों तथा अपने आतंक का मनमाना प्रयोग कर स्थिति से निपटने का मार्ग ढूंढ़ ही निकाला। जमींदारी उन्मूलन के भय से लोग सार्वजनिकएवं वर्षों से एक ही किसान द्वारा जोती–बोई जा रही जमीन को भी किसानों को चुपचाप धन लेकर बंदोबस्त देने लगे। बाबा बटेसरनाथ उपन्यास में चित्रित है– ''जमींदारी उन्मूलन शुरू किया सरकार ने। जमींदार तो पहले ही से चौकस थे। अब उन्होंने सार्वजनिक उपयोग की भूमियों को चुपके–चुपके बेचना आरम्भ कर दिया। हुनार पाठक आऐर जैनरायन झा ने राजा बहादुर से बरगद वाली यह जमीनऔर उधर वाली पुरानी पोखर चुपचाप बन्दोबस्त में ले ली।'' जमींदार खत्म हो गये, महजान टूट गये लेकिन गांव के किसानों और मजदूरों में क्या कोई भी परिवर्तन आया है? जमींदार जब तक रहे उन्हें पीसते रहे। जमींदारी जब टूटी तो उन्होंने उसके टूटने से पहले ही अपने खेत बेंच दिये। भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यास 'सती मैया का चौरा' का पात्र मुन्नी इसका विश्लेषण करता हुआ कहता है– कितने ही किसान तो जमींदारों के खेत निकाल लेने के कारण अब मजदूर बन गये हैं, और यहाँ–वहाँ मजूरी की खोज में भटक रहे हैं। तुम किसी भी किसान या मजदूर को ले लो, उसके घर जाकर देखो, उसके तन के कपड़ों को देखो, उससे पूछकर समझो कि उसमें क्या परिवर्तन आया है? जमींदार न रहे तो अब स्थानीय कांग्रेस नेताओं ने उनकी जगह ले ली है और किसानों पर वे उन्हें की तरह हुकूमत करते हैं। आज सभी टूटे हुए जमींदार और महाजन नेता क्यों हो गये हैं? रूप बदलकर वे समाज में अनाचार पहले की ही तरह कायम रखना चाहते हैं। 'वरूण के बेटे' उपन्यास का अंचल गरोखर और उससे पच्छिम कोस भर का इलाका देपुरा मैथिल के जमीदारों के अधिकार में था। लेकिन अब जमींदारी उन्मूलन कानून के मुताबिक रैयतों से जमीन का लगान या मालगुजारी वसूल, तहसील करने के हकों से वंचित हो चुके थे परन्तु –''व्यक्तिगत जोत की जमीन, बाग–बगीचे, कुआं..... और पोखर देवी–देवता के नाम चढ़ी हुई जायदाद, चारागाह, पतर–परांत, नदियों के पाट और तटवर्ती भूमि जैसी कुछ एक अंचल सम्पत्तियों के मामले में जमींदारी उन्मूलन कानून ने भूस्वामियों को खुली छूट दे दी। नतीजा यह हुआ कि पोखरों और चरागाहों तक को वे चुपके–चुपके

बेचने लगे। 'आज लगते झोपड़ी निकले सो लाभ।'' चाहे छूरी सेब पर गिरे, चाहे सेब छूरी पर गिरे कटना तो सेब को ही है, इसी प्रकार प्रत्येक युग या व्यवस्था की मार सिर्फ गरीब, किसान व मजदूर ही सहता है, हर विधि गरीबों को ही पिसना है।

जमींदारी उन्मूलन किया गया था लोगों के फायदे के लिए लेकिन जमींदार – जमीदारों का मुखौटा उतारकर भू–स्वामियों का मुखौटा चढ़ गए। शोषण का रूप बदल गया लेकिन उसमें कमी लेशमात्र भी न आयी। भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यास, सती मैया के चौरा, में मन्ने और जुबली ने भी जाने कहां से आगम को सूंघ लिया था। जुबली ने अन्य मुसलमानों को इक्ट्ठा कर एक फार्म खोलने की तजबीज पेश की। फारम रजिस्ट्री होकर खुल गया और जुबली ने फारम के बहाने अपने और दूसरे मुसलमानों के खेत असामियों से निकालकर फारम में मिला लिए। वह फारम कीमती का सेक्रेटरी हो गया।

अपनी खेती के लिए तीसरे बीघे खेत निकाल कर मन्ने ने धीरे– धीरे बाकी खेत बेंच दिये। जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् भी देशी रियासतों, कारिन्दों, ठाकुरों इत्यादि का शोषण निरन्तर जारी है। इनका अब भी क्षेत्र– विशेष में दबदबा बना हुआ है। मैला आंचल उपन्यास के जमींदार विश्वनाथ प्रसाद जमींदारी उन्मूलन विधेयक के आगमन की सूचना प्राप्त होते ही अपने क्षेत्र में रहने वाले संथालों को भूमि से हटा देते हैं। वे अपने द्वारा खोई भूमि पर से व्यवसाय विहीन एवं अधिकार विहीन होकर नहीं जाना चाहते। परिणामतः जमींदार के व्यक्तियों एवं संथालों में युद्ध होता है। संथाल खेत जाते हैं, भूमि का स्वामी जमींदार और विशाल भूमि का स्वामी बन जाता है। यही नहीं सार्वजनिक उपयोग की भूमि पर वे अपना वैधानिक अधिकार कर लेते हैं। ''मेरीगंज गांव को एक मात्र मालिक एकछत्र जमींदार, तहसीलदार बाबू विश्वनाथ मल्लिक का बम्हार देख लो.... जिस बड़े चौपाल पर एक पंक्ति में बैठकर गांधी जी के सराध के दिन लोगों ने सरबघटन भोज खाया, उसी को घेर कर खलिहान बनाया है, तहसीलदार साहब ने। दस बीघे का घेराव है।'' रेणु जी के ही उपन्यास 'परती–परिकथा' में जमींदारी उन्मूलन विधेयक पारित होते ही मुंशी जलधारी लाल दास और राम परवान सिंह सिपाही परानपुर स्टेट की भूमि जमींदार के हाथों से नहीं निकलने देते। ' इन दो कर्मचारियों ने मिलकर, कलम की नोक और लाठी के जोर से जमींदारी की रक्षा की। जमीदारी उन्मूलन की चपेट से स्टेट को बचाने का सारा श्रेय मुंशी जलधारीदास को है। साबित कर दिया – परानपुर पट्टी परती है, जमीन खुदकाश्त है, बकाश्त है, रेयती हक हैं आदि–आदि।'' अपनी रियासत के बरकरार रखने के लिए जमींदारों का न तो रूतबा ही कम हुआ न ही आर्थिक दशा में ही कोई परिवर्तन आया। इनकी प्रवृत्ति आरम्भ से ही स्वार्थपरक, क्रूर एवं असंवेदनशील थी। जमींदारी उन्मूलन स्वतन्त्रता की प्राप्ति तथा अनेकानेक नवीन विकास योजनाओं के बावजूद भी आंचलवासियों की आर्थिक स्थिति में कोई सुधार क्यों नहीं हुआ ? इसका कारण राजनीतिक हस्तक्षेप एवं भ्रष्टाचार था।

आजादी के बाद यही जमींदार नेता के रूप में दिखाई देते हैं। विभिन्न पार्टी संगघन एवं दल के रूप में। कुर्सी की राजनीति चुनाव की दूषित प्रणाली ने इन्हें अधिकाधिक सुविधाएं देने को बाध्य किया, 'इसीलिए जाते–जाते भी ये राजा, जमींदार, भू–स्वामी, सामंत चांदी काट रहे हैं। वस्तुतः जमींदारी उन्मूलन के बाद भी रियासतों की आमदनी के जरिए अनंत हैं। इन्होंने अपने जिले के राजनैतिक नेताओं की आर्थिक मदद करके उन्हें खरीद कर अपना दरबारी बना लिया है। तब इस वैषम्य ने संघर्ष को जन्म दिया। जमींदारों तथा शोषक वर्ग का दबदबा कम होने लगा था, शिव प्रसाद सिंह के उपन्यास 'अलग–अलग वैतरणी' में करैता गांव पर असामियों की भीड़ जुहार करने नहीं आती। न ही कभी छावनी के मुख्य द्वार पर रखा बड़ा सा परात नजराने के रूपयों से खनकता ही। अहीरों ने मछलियां, जुलाहों ने मुर्गी और गड़ेरियों ने सलामी में खस्सी देना एकदम बंद कर दिया। इसीलिए इन त्योहारों पर छावनी में कभी कोई खुशी उत्सव मनाने की जरूरत भी न रही।

धीरे–धीरे शोषक वर्ग पतनोन्मुख और शोषित वर्ग विकासोन्मुख होता जा रहा है। 'बलचनामा' उपन्यास में भी नागार्जुन का उद्देदश्य बचलनामा के जीवन संघर्ष के चित्रण द्वारा समाजवादी चेतना की ओर निर्देश करना है।

'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास के जैकिसुन, जीवनाथ, वीरभद्र और बाबू श्याम सुन्दर वकील नयी पीढ़ी के युवक हैं; जो संयुक्त संगठन की शक्ति से गांव में प्रगतिशील विचारों का प्रचार करते हैं। जमीन की बेदखली के खिलाफ गांव के लोगों का संयुक्त मोर्चा, पास–पड़ोस के किसानों से इस संघर्ष में मदद लेना और जरूरत पड़े तो उन्हें भी मदद पहुंचाना– उनकी जनवादी चेतना का ही संकेत देते हैं। नागार्जुन के उपन्यास 'वरूण के बेटे' में भी मछुवारे अपने अधिकारों की प्रगति के लिए समस्त शोषक वर्ग से संघर्ष करते हैं। 'दुःखमोचन' उपन्यास में तो घरेलू मजदूरिन में भी वर्ग चेतना व्याप्त है – ''अब वे छः आने माहवारी पर काम नहीं करना चाहती। जमाना तेजी से बदल रहा है बबुआन।'' वे काम बंद करके हड़ताल की सूचना दे देती है। उपन्यासकार ने मजदूरिन के रूप में सर्वहारा वर्ग और किसानों की आर्थिक मदद सजगता पर प्रकाश डाला है।

इन आंचलिक उपन्यासों में समस्याओं के तार्किक–वैचारिक हल थोड़ा मुश्किल होगा क्योंकि अंचलवासियों का जीवन नागरी नहीं है जो शुद्ध तर्क दे सके। उनके एक चेतना है, एक जज्बा है, जिनके तहत वह जीते एवं संघर्ष करते हैं। अतः इस प्रकार से आंचलिक उपन्यासकारों ने पात्रों के माध्यम से गांव में शोषण के खिलाफ वर्ग संघर्ष के साथ–साथ आर्थिक चेतना पर भी बहुत ही सजग ढंग से प्रकाश डाला है। सच्ची झांकी प्रस्तुत की है। उपन्यासों में सर्वहारा वर्ग की आर्थिक तंगी महसूस करके हृदय द्रवित हो उठता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– डॉ0 मक्खन लाल शर्मा (सं0) : हिन्दी उपन्यास – सिद्धान्त और विवेचन पृष्ठ – 177
2– डॉ0 बेचन : आधुनिक हिन्दी उपन्यास–उद्भव और विकास, पृष्ठ–304
3– नागार्जुन : वरूण के बेटे, पृष्ठ–75
4– नागार्जुन : बाबा बटेसरनाथ, पृष्ठ–47
5– देवेन्द्र सत्यार्थी : रथ के पहिए, पृ0–123
6– रामदरश मिश्र, पानी के प्राचीर, पृष्ठ–219
7– हिमांशु श्रीवास्तव : नदी फिर बह चली, पृष्ठ–24
8– नागार्जुन : बाबा बटेसरनाथ,, पृष्ठ–6
9– भैरव प्रसाद गुप्त : सती मैया का चौरा, पृष्ठ–592
10– नागार्जुन : वरूण के बेटे, पृष्ठ–29
11– फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आंचल, पृष्ठ–319
12– फणीश्वरनाथ रेणु, 'परती परिकथा', पृष्ठ– 30
13– शिव प्रसाद सिंह, अलग–अलग वैतरणी, पृष्ठ–307
14– नागार्जुन : दुःखमोचन, पृष्ठ–140